

## मेरी रचना प्रक्रिया

अखिलेश

चित्र की रचना मेरे लिए एक संसार में अपने तरीके से रहना है। उस संसार में जहाँ उसका अपना सुख-दुख, अपने पहाड़ों, अपनी नदी, अपने मौसम और अपने रंग हैं जो उस जमीन पर एक आकाश को असीम और अनन्त बनाए हुए हैं। उस असीमितता में एक सीमित दायरा है जहाँ रचना उससे बाहर है। मेरे लिये कल्पना और सौन्दर्य में परिचित आकार को ढूँढ़ना कठिन नहीं है। किन्तु फिर परिचित आकार को अपरिचितता में आकार देकर पहचानना, उसके परिचय को खत्म कर उसे पुनः एक अपरिचित सौन्दर्य में स्थापित करने का खेल ही दरअसल मेरी कोशिश होती है। यह लुकाछिपी का खेल बचपन से साथ रहा।

इस खेल में छुपते हुए हम खेल को विस्तार देते हैं मेरे लिये ऐसा विस्तार चित्रों में आता है क्योंकि मैं सतत खेलना चाहता हूँ जाहिर होते हुए नहीं बल्कि छुपते हुए। रंग और उसके स्याह अधिरे में जहाँ से मैं सफेद को—एक नये रूप में, एक नये आकार में, एक नये टोन में चुपके से पकड़ लेता हूँ वह अचम्भित हो जाता है फिर धीरे से दोस्त बन जाता है।

रंग मुझे प्रेम देते हैं मैं उनमें जीता हूँ काले रंग में छुपते हुए मैं उस प्रेम को और अधिक पास पाता हूँ। मैं अधिक ऊर्जावान होकर चित्र बनाता हूँ। यह एक रंगीय प्रेम जो अब टोनल प्रेम में बदलील हो रहा है। कई साल यानि लगभग आठ साल तक मेरे साथ रहा। मैं सिर्फ काले रंग के साथ ही खेलता रहा।

इस अधिरे में, काले रंग में मैंने पाया कि मैं हर बार अपने को किसी कोने में छुपाकर रख देता हूँ और पुनः उसी में अपने को पाता हूँ। उसको ढूँढ़ने की कोशिश में मैं वापस बाहर ही होता हूँ। पूरी तरहसे उस अधिरे में खो जाने का सुख और बुद के अचानक मिल जाने की अपरिचित पीड़ा दोनों ही को अनुग्रहित करते हुए मैं चित्र बनाता रहा हूँ। इस अधिरे में जो प्रकाशमान भी है। अनन्त असीम संभावनाएँ हैं। अधिरे में हाथ पाँव मारना और कोशिश करना, कि पूरी विनम्रता से अपने को छुमा पाऊँ, यही जारी है। मैंने हमेशा अपनी उपस्थिति विनम्र रखी है।

मैं आज तक यह नहीं जान पाया कि मैं चित्र क्यों बनाता हूँ। क्या यह चित्र बनाना लुका छिपी का खेल है ? यहाँ कहीं कुछ गलत है। चित्र बनाना या बन जाना, इससे भी आगे बहुत कुछ है, इसी बहुत कुछ को ढूँढ़ने की एक सार्थक या निरर्थक कोशिश मेरे द्वारा की जा रही है। चित्र क्या है ? मैं क्या हूँ ? रंग क्या है ? रूप क्या है ? रूपाकार क्या है ? आकार रहित रूप क्या है ? रूपित आकार क्या है ? आरोपित रूप क्या है ? रंग में परस्पर रंग क्या है ? रंग, प्रकाश और अंधेरा क्या है ? चित्र क्या है ? मैं क्या हूँ ? आदि अनेक प्रश्न उस कोरे केनवास के साथ शुरू होते हैं और इन्हीं प्रश्नों के साथ खत्म होते हैं ? यह प्रश्न करने और उत्तर न पाने का सिलसिला जारी रहता है। इसके विपरीत कई अन्य धर्मों को मैं अपने केनवास पर जिया है। कोई एक स्तूप, कोई एक रंग का परस्पर संबंध, कोई एक रूप, कोई एक आकार अनायास ही मुझे मिल जाता है और मैं ठगा सा रह जाता हूँ। यही धर्मास मेरे चित्रों में मुझे संभाले खड़ा है।

हर कोरे केनवास के सामने मैं भयभीत होता हूँ। कहीं यह इन्कार न कर दें। मुझे मेरे अस्तित्व के साथ नहीं पहचाने, और यही शिक्षक यही दुविधा मुझे उसके पास ले जाती है, ज्यों-ज्यों मैं उसके पास जाता हूँ वह उतना ही मुझसे दूर होता जाता है। इसका यह दूर जाना और प्रेरित करता है। यह प्रेम इस दूरी के कारण प्रगाढ़ है।

जिस दिन केनवास को मैं प्राप्त कर लूँगा उस दिन मेरा अंतिम दिन होगा। उस दिन मैं खत्म हो जाऊँगा, उसी दिन यह संसार खत्म हो जायेगा। प्रेम भौतिक होते ही समाप्त हो जायेगा। हर केनवास के साथ गुजारे गये समय को मैं निश्चित ही फिर से नहीं गुजारना चाहता हूँ। किन्तु हर बार इन्कार सुनने की इच्छा मुझे पुनः केनवास के सामने खड़ा करती है। मैं रोज केनवास के सामने खड़ा होता हूँ और उसे बे देखता रहता हूँ शायद यह देखना भी रचना प्रक्रिया का एक हिस्सा है यह देखना दरअसल देखने से कहीं ज्यादा किसी की तरफ बढ़ना है। मैं इसी तरह रंगों की तरफ बढ़ता जाता हूँ। पाता हूँ कि रंग मेरे ज्यादा निकट हैं। किसी एक ही रंग को ज्यादा जानना या देखना इसी प्रक्रिया में जन्म लेता है।



केनवास पर जाते हुए रंग में प्राणतत्त्व की मौजूदगी को मैं भलीभांति पहचानता हूँ। रंग को एक सक्रीय तत्त्व में बदलना उसे इस तरह से जन्म देना है कि वह अपने स्थाकार द्वारा कई सारे अर्थों को जन्म दे पायें। मेरे लिये ऐसा होना दरअसल एक चित्र से दूसरे चित्र तक पहुँचना होता है। क्योंकि रंग कभी खत्म नहीं होते और इसी तरह चित्र भी। इसी के साथ यह भी कहा जा सकता है कि रचना प्रक्रिया भी कभी समाप्त नहीं होती। अपने चित्रों के बारे में सोचते हुए, लिखते हुए या किसी से बात करते हुए भी मैं उसी प्रक्रिया में होता हूँ। किसी भी चित्रकार के लिए रचना प्रक्रिया उसके जीवन का हिस्सा नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन होती है। वह अपने जीवन में से रचना प्रक्रिया को चोरी नहीं करता बल्कि रचना प्रक्रिया से जीवन चुराता है। और यही वह फर्क हमारे सामने आता है कि रचना प्रक्रिया व जीवन को दो तरह से देखते हुए हम अपने सृजन कर्म के साथ कितनी बेईमानी करते हैं। मेरे लिये जीवन जीने का अर्थ चित्र के सामने होना होता है। तब मैं वहाँ कुछ और कर रहा होता है जैसे या तो चित्र देख रहा होता हूँ या उसे बना रहा होता हूँ। बहुत बार मैं उस बने हुए चित्र में अपने आपको देखने की कोशिश भी करता हूँ।

यह केवल मेरे लिए ही संभव है कि मैं अपने चित्र में खुद को देख पाऊँ समीक्षक या दर्शक शायद उसे नहीं देख पायें, और यह ठीक भी है। कला का अर्थ कहीं यह भी होता है कि वह हर व्यक्ति को अपने विचार से देखने का मौका दे। मैं यह नहीं चाहता कि दर्शक मेरे चित्र देखते हुए मेरे जीवन को देखें। वे क्यों मेरे जीवन को देखना चाहेंगे। उन्हें अपना जीवन वहाँ दिखाना चाहिए अगर उसमें देखने की शक्ति हो तो। इसी बात को विस्तारित करते हुए मैं यह बोलने का साहस कर सकता हूँ कि चित्र की रचना प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक कि अंतिम दर्शक उसे देख लें।

मेरा यह मानना है कि रचना प्रक्रिया चित्र में जारी होकर चित्र में ही खत्म नहीं होती बल्कि वह निरन्तर जारी है। मुझसे और केनवास से प्रवाहित हो, चित्र में से दर्शकों तक पहुँच कर भी खत्म नहीं होती, बल्कि वह आंदोलित करती है अपने क्रम को आगे बढ़ाये रखने में। यह क्रम उस वक्त तक जारी रह सकता है जब तक कि वह अपने अंतिम सत्य तक न पहुँचे। यह अंतिम सत्य मुझे नहीं मालूम और न ही उसके दर्शक को किन्तु मैं आशान्वित हूँ कि कोई एक दर्शक कोई एक

कलाकार इस सत्य तक कभी पहुँचता है। मेरे लिए यही, इसका सत्य भी है। कला की खोज दरअसल सत्य की खोज ही होती है। इस तरह के सत्य की खोज, जिसे केवल कलाकार ही खोज सकता है।

श्रुति से पैदा होकर कला सत्य तक पहुँचने की कोशिश करती है। यह कोशिश जाहिर है कि सदियों से जारी है। मैं या कोई भी चित्रकार अपनी रचना प्रक्रिया के द्वारा उस काल खंड को बढ़ाने की कोशिश ही करता है। खंड-खंड से तब बनता यह सत्य मालूम नहीं कब प्रत्यक्ष होगा। किन्तु उसके बाद भी कला अपनी जगह पर होगी। यह सत्य उस कला से अपना रूप प्राप्त कर उसे नये ढंग से पुनर्स्थापित करेगा।

रचना प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न कला ही वास्तविक कला है। अव्यक्त से व्यक्त होते ही, श्रुति से यथार्थ में आते ही वह अपना स्वस्व एक दूसरे रूप में प्राप्त करती है जो उसका नहीं है। मूल रूप से हटकर कलाकार की व्यक्तिक सोच अन्य दबाव आदि में व्यक्त को, वह सामने आती है। कला की जगह यदि कोई है तो वह रचना प्रक्रिया ही है इसलिये कला शाश्वत भी है क्योंकि इसकी रचना प्रक्रिया सतत चलती रहती है। मैं अपने चित्रों के द्वारा रचना प्रक्रिया को जन्म तो जरूर दे सकता हूँ किन्तु उसका ठौर पाना मेरे पास नहीं है। इसी कारण मैं यहाँ रचना प्रक्रिया के बारे में कुछ विशेष बता नहीं सकता सिवाय इसके कि उसका जन्म मुझमें कैसे और कहाँ से हुआ।

चित्रकला में मेरी रुचि शुरू में नहीं थी, मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं छोटा था तो चित्र और रंगों से बहुत दूर था। संभव है उस समय मेरे लिये चित्र और रंग कुछ और हों। और मैं किता उनके पास पहुँचे उन्हें अपरिचित रूप में शायद समझता रहा हूँ। मुझे बिल्कुल भी याद नहीं कि मेरे चित्रों की रचना प्रक्रिया का जन्म कैसे और कहाँ हुआ। शायद वह भी रचना प्रक्रिया ही हो, जब मैं इन सब बातों से बहुत दूर रहा। बचपन की बहुत सारी यादें, क्षण और उनका मिठासपन बहुत बार खाली समय में हमें कौंचता रहा करता है। जब मुझे चित्र और रंग के प्रति

कोई लगाव नहीं था और आज मुझे चित्र और रंगों के प्रति बहुत चाहना है ।  
लेकिन मुझे चित्र बनाते समय शायद अपने बीते हुए जीवन की याद नहीं होती  
इसका मतलब यह नहीं कि जब मैं छोटा था तो चित्रकला से बहुत दूर था और आज  
जब चित्र बना रहा हूँ तो बचपन से बहुत दूर हूँ । शायद इसी अपरिचय के कोहरे  
भरे बादलों में से इस धरती पर कला सादृश्य होती है और हम उसके समक्ष अल्प  
हो जाते हैं । दरअसल रचना प्रक्रिया के द्वारा और उस रचना प्रक्रिया के दौरान  
पैदा हुई कला के द्वारा हम अपने छोटे स्व को शाश्वत और विस्तारित स्व में  
सामने पाते हैं । जिसे हम देख तो सकते हैं लेकिन उसे छूने से हमें यह डर लगता है कि क  
कहीं कुछ खत्म ना हो जाये ।